

## Chapter बत्तीस

### पुनः मिलाप

इस अध्याय में वर्णन हुआ है कि श्रीकृष्ण ने किस तरह अपने को गोपियों के मध्य प्रकट किया जो उनसे विछोह के कारण अत्यधिक विक्षुब्ध हो चुकी थीं। जब वे गोपियों को ढाढ़स दे चुके तो उन्होंने गहन आनन्द की अनुभूति व्यक्त की।

जब गोपियाँ कामदेव को भी आकर्षित करने वाले कृष्ण को देखने की तीव्र उत्सुकता को अनेक प्रकार से व्यक्त कर चुकीं तो वे रेशमी पीत वस्त्र पहने और सुन्दर फूलों की माला पहने उनके समक्ष प्रकट हुए। कुछ गोपियाँ उन्हें देखकर आनन्द से इतनी गद्गद हो उठीं कि उन्होंने उनका हाथ पकड़

लिया, कुछ ने अपने कन्धों पर उनका हाथ रख लिया और अन्यो ने उनका जूठा पान खा लिया। इस तरह उन्होंने उनकी सेवा की।

एक गोपी ने कृष्ण के प्रति प्रेममय क्रोध में आकर अपना होंठ काट लिया और स्तब्ध खड़ी रह कर उनको देखती रही। चूँकि गोपियाँ कृष्ण से इतनी आसक्त थीं कि निरन्तर उन्हें ताकते रहकर भी उनकी प्यास शान्त नहीं हुई। एक ने कृष्ण को अपने हृदय के भीतर रख लिया; अपनी आँखें बन्द कीं और अपने भीतर बारम्बार उनका आलिंगन करते हुए दिव्य आनन्द में खो गई मानो कोई योगी हो। इस तरह भगवान् से विलग होने के कारण गोपियों ने जो पीड़ा अनुभव की थी वह दूर हो गई।

इसके बाद कृष्ण अपनी अन्तरंगा शक्ति रूपी गोपियों के संग यमुना के तट पर गये। तब गोपियों ने अपने दुपट्टों से कृष्ण के लिए आसन बना दिया और जब वे बैठ गये तो वे प्रेमयुक्त हाव-भाव द्वारा उनसे आनन्द लेने लगीं। गोपियों को अब भी क्षोभ था कि कृष्ण अन्तर्धान हो गये थे अतः कृष्ण ने उन्हें बताया कि ऐसा उन्होंने क्यों किया। उन्होंने यह भी बताया कि वे उनकी प्रेममयी भक्ति के वशीभूत होकर ही आये हैं और सदैव उनके ऋणी रहेंगे।

श्रीशुक उवाच

इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रथा ।

रुरुदुः सुस्वरं राजन्कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार, जैसाकि ऊपर कहा गया; गोप्यः—गोपियाँ; प्रगायन्त्यः—गाती हुई; प्रलपन्त्यः—बातें करतीं; च—तथा; चित्रथा—अनेक मनमोहक विधियों से; रुरुदुः—चिल्लाई; सु-स्वरम्—तेजी से; राजन्—हे राजा; कृष्ण-दर्शन—कृष्ण का दर्शन करने की; लालसाः—लालसाएँ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्, इस तरह गाकर तथा अपने हृदय की बातों को विविध मोहक विधियों से प्रकट करके गोपियाँ जोर जोर से रोने लगीं। वे कृष्ण का दर्शन करने के लिए अत्यन्त लालायित थीं।

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।

पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तासाम्—उनके समक्ष; आविरभूत्—प्रकट हुए; शौरिः—भगवान् कृष्ण; स्मयमान—हँसते हुए; मुख—मुँह; अम्बुजः—कमल सट्टश; पीत—पीला; अम्बर—वस्त्र; धरः—पहने; स्रक्-वी—फूलों की माला पहने; साक्षात्—प्रत्यक्ष; मन्-मथ—मन को मोहित करने वाले, कामदेव का; मन्—मन का; मथः—मथने या मोहने वाला।

तब भगवान् कृष्ण अपने मुखमण्डल पर हँसी धारण किये गोपियों के समक्ष प्रकट हो गये।

माला तथा पीत वस्त्र पहने वे ऐसे लग रहे थे, जो सामान्य जनों के मन को मोहित करने वाले कामदेव के मन को भी मोहित कर सकते थे।

तं विलोक्यागतं प्रेष्ठं प्रीत्युत्फुल्लदृशोऽबलाः ।

उत्तस्थुर्युगपत्सर्वास्तन्वः प्राणमिवागतम् ॥ ३ ॥

#### शब्दार्थ

तम्—उस; विलोक्य—देखकर; आगतम्—वापस आया; प्रेष्ठम्—अपने प्रियतम को; प्रीति—स्नेह से; उत्फुल्ल—खिली हुई; दृशः—आँखें; अबलाः—युवतियाँ; उत्तस्थुः—खड़ी हो गई; युगपत्—तुरन्त एकसाथ; सर्वाः—सभी; तन्वः—शरीर के; प्राणम्—प्राण वायु; इव—सदृश; आगतम्—आया हुआ।

जब गोपियों ने देखा कि उनका परमप्रिय कृष्ण उनके पास लौट आया है, तो वे सहसा उठ खड़ी हुईं और स्नेह के कारण उनकी आँखें पूरी तरह खिल उठीं। ऐसा लगा मानों उनके (मृत) शरीर में प्राण वापस आ गये हों।

काचित्कराम्बुजं शौरैर्जगृहेऽञ्जलिना मुदा ।

काचिद्धार तद्बाहुमसे चन्दनभूषितम् ॥ ४ ॥

#### शब्दार्थ

काचित्—उनमें से एक; कर-अम्बुजम्—कर-कमल को; शौरैः—भगवान् कृष्ण के; जगृहे—पकड़ लिया; अञ्जलिना—अपनी हथेली में; मुदा—हर्ष के मारे; काचित्—दूसरी ने; दधार—रख लिया; तत्-बाहुम्—उनकी भुजा को; अंसे—अपने कंधे पर; चन्दन—चन्दन लेप से; भूषितम्—सजाई गई।

एक गोपी ने हर्षित होकर कृष्ण के हाथ को अपनी हथेलियों के बीच में ले लिया और दूसरी ने चन्दनलेप से विभूषित उनकी भुजा अपने कंधे पर रख ली।

काचिदञ्जलिनागृह्णात्तन्वी ताम्बूलचर्वितम् ।

एका तदङ्घ्रिकमलं सन्तप्ता स्तनयोरधात् ॥ ५ ॥

#### शब्दार्थ

काचित्—एक; अञ्जलिना—हथेलियों से; अगृह्णात्—ले लिया; तन्वी—छरहरी ने; ताम्बूल—पान का; चर्वितम्—जूठन; एका—एक ने; तत्—उसका; अङ्घ्रि—पाँव; कमलम्—कमलवत्; सन्तप्ता—तपते हुए; स्तनयोः—अपने स्तनों पर; अधात्—रख लिया।

एक छरहरी गोपी ने आदरपूर्वक अपनी हथेलियों में उनके चबाये पान का जूठन ले लिया

और ( काम ) इच्छा से तप्त दूसरी गोपी ने उनके चरणकमल अपने स्तनों पर रख लिए।

एका भ्रुकुटिमाबध्य प्रेमसंरम्भविह्वला ।

घनन्तीवैक्षत्कटाक्षेपैः सन्दष्टदशनच्छदा ॥ ६ ॥

#### शब्दार्थ

एका—एक अन्य गोपी ने; भ्रु-कुटिम्—अपनी भौंहों को; आबध्य—सिकोड़ कर; प्रेम—अपने शुद्ध प्रेम; संरम्भ—क्रोध से; विह्वला—आपे में न रहकर; घनन्ती—चोट पहुँचाती; इव—मानो; ऐक्षत्—देखा; कट—अपने कटाक्ष से; आक्षेपैः—आक्षेपों से; सन्दष्ट—काटते हुए; दशन—अपने दाँत के; छदा—आवरण ( अपने होठों को )।

एक गोपी प्रेममय क्रोध से विह्वल होकर अपने होठ काटने लगी और क्रुद्ध भौंहों से उन्हें ताकने लगी मानो वह अपनी कुटिल चितवनों से उन्हें घायल कर देगी।

अपरानिमिषद्दृग्भ्यां जुषाणा तन्मुखाम्बुजम् ।

आपीतमपि नातृप्यत्सन्तस्तच्चरणं यथा ॥ ७ ॥

#### शब्दार्थ

अपरा—एक अन्य गोपी; अनिमिषत्—अपलक; दृग्भ्याम्—आँखों से; जुषाणा—आस्वाद करती; तत्—उसका; मुख-  
अम्बुजम्—कमलमुख; आपीतम्—पूर्णतया आस्वादित; अपि—यद्यपि; न अतृप्यत्—तृप्त नहीं हुई; सन्तः—सन्त गण; तत्-  
चरणम्—उनके चरणों को; यथा—जिस तरह।

एक अन्य गोपी उनके कमल को अपलक नेत्रों से देखती रही किन्तु माधुरी का गहन आस्वाद कर लेने पर भी तृप्त नहीं हुई जिस तरह सन्त पुरुष भगवान् के चरणों का ध्यान करते हुए तृप्त ही नहीं होते।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर व्याख्या करते हैं कि यहाँ पर भगवान् के चरणों का ध्यान करने वाले सन्त पुरुषों से जो उपमा दी गई है, वह केवल आंशिक रूप से लागू होती है क्योंकि कृष्ण के लौटने पर गोपियों को जो आनन्द हुआ वह वास्तव में अद्वितीय था। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती यह भी प्रकट करते हैं कि यह विशेष गोपी सबों से परम भाग्यशालिनी श्रीमती राधारानी ही थी।

तं काचिन्नेत्ररन्ध्रेण हृदि कृत्वा निमील्य च ।

पुलकाङ्गुपगुह्यास्ते योगीवानन्दसम्प्लुता ॥ ८ ॥

#### शब्दार्थ

तम्—उसको; काचित्—उनमें से एक; नेत्र—अपनी आँखों के; रन्ध्रेण—छिद्र से; हृदि—अपने हृदय में; कृत्वा—रखकर; निमील्य—बन्द करके; च—तथा; पुलक-अङ्गी—अंग अंग में रोमांचित हुई; उपगुह्य—आलिंगन करके; आस्ते—रहती रही; योगी—योगी; इव—सदृश; आनन्द—आनन्द में; सम्प्लुता—निमग्न।

एक गोपी ने भगवान् को अपनी आँखों के छिद्र से ले जाकर उन्हें अपने हृदय में रख लिया।

तब उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं और रोमांचित होकर वह भीतर ही भीतर उनका लगातार आलिंगन करने लगी। इस तरह दिव्य आनन्द में निमग्न वह भगवान् का ध्यान करने वाले योगी जैसी लग रही थी।

**तात्पर्य :** श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि अभी तक इस अध्याय में जिन सात गोपियों का वर्णन हुआ है वे आठ मुख्य गोपियों में से पहली सात हैं जिनका पद ऐसा था कि कृष्ण के प्रकट होते ही वे उनके पास पहुँच सकीं। आचार्य ने *श्री वैष्णव तोषणी* से एक श्लोक उद्धृत किया है, जिसमें इन सातों गोपियों के नाम चन्द्रावली, श्यामला, शैव्या, पद्मा, श्रीराधा, ललिता और विशाखा दिये गये हैं। आठवीं भद्रा हो सकती है। *श्री वैष्णव तोषणी स्कन्द पुराण* के उस श्लोक को उद्धृत करती है, जिसमें कहा गया है कि ये आठ गोपियाँ तीन अरब गोपियों में से मुख्य थीं। श्रील रूप गोस्वामी कृत *उज्ज्वल नीलमणि* में गोपियों की वंशावली के विषय में विशद् जानकारी प्राप्त है।

*पद्मपुराण* पुष्टि करता है कि श्रीराधा गोपियों में अग्रणी हैं।

*यथा राधाप्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा ।*

*सर्वगोपीषु सैवैका विष्णोरत्यन्तवल्लभा ॥*

“जिस प्रकार श्रीमती राधारानी कृष्ण को सर्वाधिक प्रिय हैं उसी तरह उनका स्नान कुंड भी प्रिय है। समस्त गोपियों में वे भगवान् की सर्वाधिक प्रिय हैं।”

*बृहद्-गौतमीय-तन्त्र* भी श्रीमती राधारानी का नाम कृष्ण की सर्वप्रमुख प्रेयसी के रूप में लेता है।

*देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता ।*

*सर्वलक्ष्मीमयी सर्वकान्तिः सम्मोहिनी परा ॥*

“दिव्य देवी श्रीमती राधारानी भगवान् श्रीकृष्ण की प्रत्यक्ष अर्धांगिनी हैं। वे समस्त लक्ष्मियों में प्रधान हैं। वे सर्वआकर्षक भगवान् को आकृष्ट करने के लिए समस्त आकर्षण-युक्त हैं। वे भगवान् की आदि अन्तरंगा शक्ति हैं।” (यह अनुवाद श्रील प्रभुपाद कृत *चैतन्य-चरितामृत* आदि ४.८३ के अंग्रेजी से लिया गया है।)

श्रीराधा विषयक अतिरिक्त जानकारी ऋग् परिशिष्ट (ऋग्वेद का परिशिष्ट) में मिलती है— *राधया माधवो देवो माधवेनैव राधिका । विभ्राजन्ते जनेषु*—समस्त व्यक्तियों में श्रीराधा ही ऐसी हैं जिनके संग

में भगवान् माधव विशेष रूप से महिमामय हैं जिस तरह कि स्वयं राधा उनकी उपस्थिति में यशस्विनी हैं ।

सर्वास्ताः केशवालोकपरमोत्सवनिर्वृताः ।

जहुर्विरहजं तापं प्राज्ञं प्राप्य यथा जनाः ॥ ९ ॥

#### शब्दार्थ

सर्वाः—सभी; ताः—उन गोपियों ने; केशव—भगवान् कृष्ण के; आलोक—दिखाई पड़ने से; परम—परम; उत्सव—उल्लास या उत्सव का; निर्वृताः—हर्ष का अनुभव करतीं;; जहुः—त्याग दिया; विरह—जम्—उनके विरह से उत्पन्न; तापम्—कष्ट को; प्राज्ञम्—आध्यात्मिक रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति को; प्राप्य—पाकर; यथा—जिस तरह; जनाः—सामान्य लोग ।

सभी गोपियों ने जब अपने प्रिय केशव को फिर से देखा तो उन्हें परम उल्लास का अनुभव हुआ। उन्होंने विरह-दुःख को त्याग दिया जिस तरह कि सामान्य लोग आध्यात्मिक रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति की संगति पाकर अपने दुख भूल जाते हैं।

ताभिर्विधूतशोकाभिर्भगवानच्युतो वृतः ।

व्यरोचताधिकं तात पुरुषः शक्तिभिर्यथा ॥ १० ॥

#### शब्दार्थ

ताभिः—इन गोपियों द्वारा; विधूत—पूर्णतया धुली; शोकाभिः—अपने शोक से; भगवान्—भगवान्; अच्युतः—अच्युत; वृतः—घिरी हुई; व्यरोचत—उज्वल दिखीं; अधिकम्—अत्यधिक; तात—हे प्रिय ( राजा परीक्षित ); पुरुषः—परमात्मा; शक्तिभिः—अपनी दिव्य शक्तियों से; यथा—जिस तरह।

समस्त शोक से मुक्त हुई गोपियों से घिरे हुए पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अच्युत भव्यता के साथ चमक रहे थे। हे राजन्, कृष्ण ऐसे लग रहे थे जिस तरह अपनी आध्यात्मिक शक्तियों से घिरे हुए परमात्मा हों।

तात्पर्य : गोपियाँ भगवान् कृष्ण की अन्तरंगा शक्तियाँ हैं अतः जब वे शोक से मुक्त होकर फिर से प्रसन्न हो गईं तो भगवान् भी पहले की अपेक्षा और अधिक कान्तिमान लगने लगे और उनका दिव्य आनन्द बढ़ गया। कृष्ण गोपियों से दिव्य प्रेम करते हैं और गोपियाँ भी उन्हें उसी तरह से चाहती हैं। जो लोग इस भौतिक संसार में बँधे हुए हैं उन्हें आध्यात्मिक स्तर पर सम्पन्न होने वाला यह व्यापार समझ में नहीं आता।

ताः समादाय कालिन्ध्या निर्विशय पुलिनं विभुः ।

विकसत्कुन्दमन्दार सुरभ्यनिलषट्पदम् ॥ ११ ॥

शरच्चन्द्रांशुसन्दोहध्वस्तदोषातमः शिवम् ।  
कृष्णाया हस्ततरला चितकोमलवालुकम् ॥ १२ ॥

**शब्दार्थ**

ताः—उन गोपियों को; समादाय—लेकर; कालिन्ध्याः—यमुना के; निर्विश्य—प्रवेश करके; पुलिनम्—तट पर; विभुः—सर्वशक्तिमान भगवान्; विकसत्—खिले हुए; कुन्द-मन्दार—कुन्द तथा मन्दार के फूलों की; सुरभि—सुगन्धित; अनिल—मन्द वायु से; सत्-पदम्—भौरों से; शरत्—शरदकालीन; चन्द्र—चन्द्रमा की; अंशु—किरणों की; सन्दोह—प्रचुरता से; ध्वस्त—दूर हुआ; दोषा—रात्रि का; तमः—अँधेरा; शिवम्—शुभ; कृष्णायाः—यमुना नदी का; हस्त—हाथों की तरह; तरल—अपनी लहरों से; आचित—एकत्रित; कोमल—मुलायम; वालुकम्—बालू, रेत ।

तत्पश्चात् सर्वशक्तिमान भगवान् गोपियों को अपने साथ कालिन्दी के तट पर ले गये जिसने अपने तट पर अपनी लहरों रूपी हाथों से कोमल बालू के ढेर बिखेर दिये थे। उस शुभ स्थान में कुन्द तथा मन्दार फूलों के खिलने से बिखरी सुगन्धि को लेकर मन्द मन्द वायु अनेक भौरों को आकृष्ट कर रही थी और शरदकालीन चन्द्रमा की प्रभूत किरणों रात्रि के अंधकार को दूर कर रही थीं।

तद्दर्शनाह्लादविधूतहृद्रुजो

मनोरथान्तं श्रुतयो यथा ययुः ।

स्वैरुत्तरीयैः कुचकुङ्कुमाङ्कितै-

रचीक्रिपन्नासनमात्मबन्धवे ॥ १३ ॥

**शब्दार्थ**

तत्—उस कृष्णा को; दर्शन—देखने से; आह्लाद—आनन्द से; विधूत—बहकर, ले जाई गई; हृत्—अपने हृदयों में; रुजः—पीड़ा; मनः-रथ—अपनी इच्छाओं की; अन्तम्—पूर्ति; श्रुतयः—श्रुतियाँ, शास्त्र; यथा—जिस तरह; ययुः—प्राप्त किया; स्वैः—अपनी; उत्तरीयैः—ओढ़नी से; कुच—स्तनों के; कुङ्कुम—सिन्दूर से; अङ्कितैः—लेप की हुई; अचीक्रिपन्—बना दिया; आसनम्—आसन; आत्म—अपनी आत्मा के; बन्धवे—मित्र के लिए ।

अपने समक्ष साक्षात् वेद रूप कृष्णा के दर्शन के आनन्द से गोपियों की हृदय-वेदना शमित हो गई और उन्हें लगा कि उनकी सारी इच्छाएँ पूरी हो गईं। उन्होंने अपने प्रिय मित्र कृष्णा के लिए अपनी ओढ़नियों से, जो कि उनके स्तनों में लगे कुंकुम से सनी थीं, आसन बना दिया।

तात्पर्य : इसी स्कन्ध (अध्याय ८७, श्लोक २३) में श्रुतियों ने या कि साक्षात् वेदों ने निम्नवत् प्रार्थना की है—

स्त्रिय उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविषक्तधियो ।

वयमपि ते समाः समदृशोंऽन्निसरोजसुधाः ॥

“इन स्त्रियों ने अपने मन को विशाल सर्परूपी भगवान् कृष्णा की बलिष्ठ भुजाओं के ध्यान में लीन

कर दिया। हम उन्हीं गोपियों सा बनकर उनके चरणकमलों की सेवा करना चाहते हैं।” श्रुतियों ने ब्रह्मा के पिछले दिन कृष्ण को प्रकट होते देख लिया था और उनके मन में उनकी संगति करने की उत्कट इच्छा हो रही थी। तत्पश्चात् वे इस कल्प में गोपियाँ बनीं। चूँकि मानव समाज में वेद शाश्वत हैं अतः इस कल्प में श्रुतियाँ भी कृष्ण के लिए इच्छुक होती हैं और अगले कल्प में वे भी गोपियाँ बनेंगी। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ऐसी जानकारी देते हैं।

तत्रोपविष्टो भगवान्स ईश्वरो

योगेश्वरान्तर्हृदि कल्पितासनः ।

चकास गोपीपरिषद्गतोऽर्चित-

स्त्रैलोक्यलक्ष्म्येकपदं वपुर्दधत् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; उपविष्टः—आसीन; भगवान्—भगवान्; सः—वह; ईश्वरः—परम नियन्ता; योग-ईश्वर—यौगिक ध्यान के स्वामियों के; अन्तः—भीतर; हृदि—हृदयों में; कल्पित—बना लिया; आसनः—अपना स्थान; चकास—चमत्कृत लगने लगे; गोपी-परिषत्—गोपियों की सभा में; गतः—उपस्थित; अर्चितः—पूजित; त्रै-लोक्य—तीनों लोकों के; लक्ष्मी—सौन्दर्य तथा अन्य ऐश्वर्यों के; एक—एकमात्र; पदम्—आगार; वपुः—साकार स्वरूप; दधत्—प्रदर्शित करते हुए।

जिन भगवान् कृष्ण के लिए बड़े बड़े योगेश्वर अपने हृदयों में आसन की व्यवस्था करते हैं वही कृष्ण गोपियों की सभा में आसन पर बैठ गये। उनका दिव्य शरीर, जो तीनों लोकों में सौन्दर्य तथा ऐश्वर्य का एकमात्र धाम है, गोपियों द्वारा कृष्ण की पूजा करने पर जगमगा उठा।

तात्पर्य : योगेश्वरों में शिव, अनन्त शेष तथा अन्य महापुरुष सम्मिलित हैं। ये सभी भगवान् को अपने हृदयकमलों पर विराजमान करते हैं। वही भगवान्, गोपियों के उत्कट निस्वार्थ प्रेम के वशीभूत होकर यमुना के तट पर उनकी सुगन्धित ओढ़नियों पर बैठने के बाद उनका प्रेमी बनने तथा उनके साथ वृन्दावन में नृत्य करने के लिए राजी हो गये।

सभाजयित्वा तमनङ्गदीपनं

सहासलीलेक्षणविभ्रमभ्रुवा ।

संस्पर्शनेनाङ्ककृताङ्घ्रिहस्तयोः

संस्तुत्य ईषत्कुपिता बभाषिरे ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

सभाजयित्वा—सम्मानित करके; तम्—उसको; अनङ्ग—कामेच्छाओं के; दीपनम्—उद्दीप्त करने वाला; स-हास—हँसते हुए; लीला—क्रीड़ापूर्ण; ईक्षण—चितवन से; विभ्रम—खिलवाड़ करते; भ्रुवा—अपनी भौंहें से; संस्पर्शनेन—स्पर्श से; अङ्क—

अपनी गोदों में; कृत—रख कर; अङ्घ्रि—उनके पाँवों; हस्तयोः—तथा हाथों को; संस्तुत्य—प्रशंसा करके; ईषत्—कुछ कुछ; कुपिताः—क्रुद्ध; बभाषिरे—बोलीं।

श्रीकृष्ण ने गोपियों के भीतर कामवासना जागृत कर दी थी और वे अपनी क्रीड़ापूर्ण हँसी से उनको निहारतीं, अपनी भौंहों से प्रेममय इशारे करतीं तथा अपनी अपनी गोदों में उनके हाथ तथा पाँव रखकर उन्हें मलती हुई उनका सम्मान करने लगीं। किन्तु उनकी पूजा करते हुए भी वे कुछ कुछ रुष्ट थीं अतएव वे उनसे इस प्रकार बोलीं।

श्रीगोप्य ऊचुः

भजतोऽनुभजन्त्येक एक एतद्विपर्ययम् ।

नोभयांश्च भजन्त्येक एतन्नो ब्रूहि साधु भोः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

श्री-गोप्यः ऊचुः—गोपियों ने कहा; भजतः—अपना सम्मान करने वालों से; अनु—परस्पर; भजन्ति—आदर करते हैं; एके—कुछ; एके—कुछ; एतत्—इसके; विपर्ययम्—विपरीत; न उभयान्—दोनों से नहीं; च—तथा; भजन्ति—परस्पर प्रशंसा करते हैं; एके—कुछ; एतत्—यह; नः—हमसे; ब्रूहि—बोलिये; साधु—ढंग से; भोः—अरे।

गोपियों ने कहा : कुछ लोग केवल उन्हीं से स्नेह जताते हैं, जो उनके प्रति स्नेहिल होते हैं जबकि अन्य लोग उनके प्रति भी स्नेह दिखाते हैं, जो शत्रुवत् या उदासीन होते हैं। फिर भी कुछ लोग किसी से भी स्नेह नहीं जताते। हे कृष्ण, हमसे इस विषय की समुचित व्याख्या करें।

तात्पर्य : विनम्र दिखने वाले इस प्रश्न द्वारा गोपियाँ भगवान् कृष्ण द्वारा उनके प्रेम का समुचित प्रतिदान न करने की बात प्रकट कर देना चाहती थीं। जब कृष्ण ने उन्हें जंगल में छोड़ दिया था, तो वे अत्यधिक विचलित थीं। वे यह जानना चाह रही हैं कि इन प्रेम-व्यापारों में उन्होंने गोपियों को क्यों कष्ट उठाने दिया।

श्रीभगवानुवाच

मिथो भजन्ति ये सख्यः स्वार्थैकान्तोद्यमा हि ते ।

न तत्र सौहृदं धर्मः स्वार्थार्थं तद्धि नान्यथा ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; मिथः—परस्पर; भजन्ति—प्रेम करते हैं; ये—जो; सख्यः—मित्रगण; स्व-अर्थ—अपने लिए; एक-अन्त—नितान्त; उद्यमाः—जिनका प्रयत्न; हि—निस्सन्देह; ते—वे; न—नहीं; तत्र—वहाँ पर; सौहृदम्—सच्ची मित्रता; धर्मः—असली धार्मिकता; स्व-अर्थ—अपने लाभ; अर्थम्—के लिए; तत्—वह; हि—निस्सन्देह; न—नहीं; अन्यथा—अन्यथा।

भगवान् ने कहा : तथाकथित मित्र जो अपने लाभ के लिए एक दूसरे से स्नेह जताते हैं, वे वास्तव में स्वार्थी हैं। न तो उनकी मित्रता सच्ची होती है न ही वे धर्म के असली सिद्धान्तों का

पालन करते हैं। यदि वे एक दूसरे से लाभ की आशा न करें तो वे प्रेम नहीं कर सकते।

तात्पर्य : भगवान् गोपियों को आगाह करते हैं कि शुद्ध प्रेमपूर्ण मित्रता में कोई स्वार्थ-भावना नहीं होती। प्रत्युत मित्र के प्रति केवल प्रेम होता है।

भजन्त्यभजतो ये वै करुणाः पितरौ यथा ।

धर्मो निरपवादोऽत्र सौहृदं च सुमध्यमाः ॥ १८ ॥

#### शब्दार्थ

भजन्ति—निष्ठापूर्वक सेवा करते हैं; अभजतः—न सेवा करने वालों के साथ; ये—जो; वै—निस्सन्देह; करुणाः—दयालु; पितरौ—माता पिता; यथा—जिस तरह; धर्मः—धार्मिक कर्तव्य; निरपवादः—त्रुटिरहित; अत्र—इसमें; सौहृदम्—मित्रता; च—तथा; सु-मध्यमाः—हे पतली कमर वालियो।

हे पतली कमर वाली गोपियों, कुछ लोग सचमुच दयालु होते हैं या माता-पिता की भाँति स्वाभाविक रूप से स्नेहिल होते हैं। ऐसे लोग उन लोगों की भी निष्ठापूर्वक सेवा करते हैं, जो बदले में उनसे प्रेम करने से चूक जाते हैं। वे ही धर्म के असली त्रुटिविहीन मार्ग का अनुसरण करते हैं और वे ही असली शुभचिन्तक हैं।

भजतोऽपि न वै केचिद्भजन्त्यभजतः कुतः ।

आत्मारामा ह्याप्तकामा अकृतज्ञा गुरुद्रुहः ॥ १९ ॥

#### शब्दार्थ

भजतः—अनुकूल कार्य करने वालों के साथ; अपि—भी; न—नहीं; वै—निश्चय ही; केचित्—कुछ; भजन्ति—प्रेम करते हैं; अभजतः—अनुकूल कार्य न करने वालों के साथ; कुतः—क्या कहा जाय; आत्म-आरामाः—आत्म-तुष्ट; हि—निस्सन्देह; आप्त-कामाः—जिनकी भौतिक इच्छाएँ पूर्ण हो चुकी हैं; अकृत-ज्ञाः—कृतघ्न; गुरु-द्रुहः—गुरुजनों के शत्रु।

फिर कुछ व्यक्ति ऐसे हैं, जो आध्यात्मिक रूप से आत्म तुष्ट हैं, भौतिक दृष्टि से परिपूर्ण हैं या स्वभाव से कृतघ्न हैं या सहज रूप से श्रेष्ठजनों से ईर्ष्या करने वाले हैं। ऐसे लोग उनसे भी प्रेम नहीं करते जो उनसे प्रेम करते हैं, तो फिर जो शत्रुवत् हैं उनका क्या कहना ?

तात्पर्य : कुछ लोग आत्माराम होने के कारण अन्यो के स्नेह का प्रतिदान नहीं करते क्योंकि वे संसारी बर्ताव के बन्धन से बचना चाहते हैं। कुछ लोग ईर्ष्या या अक्खड़पन के कारण प्रेम नहीं करते। और कुछ लोग तो मात्र इसलिए प्रेम नहीं करते हैं क्योंकि वे भौतिक दृष्टि से संतुष्ट होते हैं अतएव उनके नवीन भौतिक अवसरों में अरुचिकर लगते हैं। भगवान् कृष्ण धैर्यपूर्वक ये बातें गोपियों को बता रहे हैं।

नाहं तु सख्यो भजतोऽपि जन्तून्  
 भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये ।  
 यथाधनो लब्धधने विनष्टे  
 तच्चिन्तयान्यन्निभृतो न वेद ॥ २० ॥

### शब्दार्थ

न—नहीं; अहम्—मैं; तु—दूसरी ओर; सख्यः—हे मित्रो; भजतः—पूजा करते हुए; अपि—भी; जन्तून्—जीवों से; भजामि—आदान-प्रदान करता हूँ; अमीषाम्—उनकी; अनुवृत्ति—लालसा (शुद्ध प्रेम के लिए); वृत्तये—प्रेरित करने के लिए; यथा—जिस तरह; अधनः—निर्धन व्यक्ति; लब्ध—प्राप्त करके; धने—सम्पत्ति; विनष्टे—तथा नष्ट होने पर; तत्—उसका; चिन्तया—उत्सुक विचार से; अन्यत्—अन्य कोई वस्तु; निभृतः—पूरित; न वेद—नहीं जानता ।

किन्तु हे गोपियो, मैं उन जीवों के प्रति भी तत्क्षण स्नेह प्रदर्शित नहीं कर पाता जो मेरी पूजा करते हैं। इसका कारण यह है कि मैं उनकी प्रेमाभक्ति को प्रगाढ़ करना चाहता हूँ। इससे वे ऐसे निर्धन व्यक्ति के सदृश बन जाते हैं जिसने पहले कुछ सम्पत्ति प्राप्त की थी किन्तु बाद में उसे खो दिया है। इस तरह उसके बारे में वह इतना चिन्तित हो जाता है कि और कुछ सोच ही नहीं पाता ।

तात्पर्य : भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण कहते हैं—ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् लोग जिस तरह मेरे पास पहुँचते हैं मैं तदनु रूप उनसे प्रेम करता हूँ। फिर भी यदि कोई व्यक्ति भक्तिपूर्वक भगवान् के पास जाता है, तो हो सकता है कि भक्त के प्रेम को तीव्र बनाने के लिए भगवान् तुरन्त उसको प्रेम का पूरी तरह आदान-प्रदान न करें। वस्तुतः भगवान् सचमुच प्रतिदान करते हैं। एक निष्ठावान भक्त सदैव भगवान् से प्रार्थना करता है “कृपया मेरी सहायता करें जिससे मैं शुद्धभाव से आपसे प्रेम कर सकूँ।” इसलिए कृष्ण द्वारा उपेक्षा वास्तव में भक्त की प्रार्थना की पूर्ति होती है। कृष्ण अपने को हमसे विलग करते प्रतीत होते हुए, अपने प्रति हमारे प्रेम को तीव्र बनाते हैं। इसका फल यह होता है कि हम जो चाहते हैं और जिसके लिए प्रार्थना करते हैं उसे अर्थात् परम सत्य कृष्ण के अगाध प्रेम को प्राप्त करते हैं। इस तरह कृष्ण द्वारा की गई प्रतीत होने वाली उपेक्षा वास्तव में उनका विचारपूर्ण प्रतिदान है और हमारी गहनतम तथा शुद्धतम इच्छा की पूर्ति है।

आचार्यों के अनुसार, जब कृष्ण गोपियों से यह श्लोक कहने लगे तो वे एक दूसरे को तिरछी निगाहों से देखने लगीं और अपने मुखों पर आने वाली हँसी को छिपाने का प्रयास करने लगीं। अभी कृष्ण बोल ही रहे थे कि गोपियों को अनुभव होने लगा कि वे उन्हें प्रेमाभक्ति की सर्वोच्च सिद्धि प्रदान कर रहे हैं।

एवं मदर्थोऽङ्गितलोकवेद-

स्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः ।

मयापरोक्षं भजता तिरोहितं

मासूयितुं माहंथ तत्प्रियं प्रियाः ॥ २१ ॥

### शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; मत्—मेरे; अर्थ—हेतु; अङ्गित—त्यागकर; लोक—सांसारिक मत; वेद—वेदों का मत; स्वानाम्—तथा सम्बन्धियों को; हि—निस्सन्देह; वः—तुम्हारा; मयि—मेरे लिए; अनुवृत्तये—प्रेमाधिक्य के लिए; अबलाः—हे बालाओ; मया—मेरे द्वारा; अपरोक्षम्—तुम्हारी दृष्टि से ओझल; भजता—वास्तव में प्रेम करने वाला; तिरोहितम्—अन्तर्धान; मा—मेरे साथ; असूयितुम्—शत्रुता होने से; म अहंथ—नहीं चाहिए; तत्—अतः; प्रियम्—अपने प्रियतम के साथ; प्रियाः—हे प्रियाओ ।

हे बालाओ, यह जानते हुए कि तुम सबों ने मेरे ही लिए लोकमत, वेदमत तथा अपने सम्बन्धियों के अधिकार को त्याग दिया है मैंने जो किया वह अपने प्रति तुम लोगों की आसक्ति को बढ़ाने के लिए ही किया है। तुम लोगों की दृष्टि से सहसा अपने को ओझल बनाकर भी मैं तुम लोगों से प्रेम करना रोक नहीं पाया। अतः प्रिय गोपियो, तुम अपने प्रेमी अर्थात् मेरे प्रति दुर्भावनाओं को स्थान न दो।

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् इंगित करते हैं कि यद्यपि गोपियाँ उनके प्रति अपने प्रेम में पहले से पूर्ण थीं फिर भी उनकी पूर्णता को अकल्पनीय रूप से बढ़ाने और संसार के समक्ष दृष्टान्त प्रस्तुत करने के लिए उन्होंने वैसा किया।

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां

स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ।

या माभजन्दुर्जरगेहशृङ्खलाः

संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना ॥ २२ ॥

### शब्दार्थ

न—नहीं; पारये—बना पाने में समर्थ; अहम्—मैं; निरवद्य-संयुजाम्—छल से पूर्णतया मुक्त होने वालों के प्रति; स्व-साधु-कृत्यम्—उचित हर्जाना; विबुध-आयुषा—देवताओं के बराबर आयु में; अपि—यद्यपि; वः—तुमको; याः—जो; मा—मुझको; अभजन्—पूजा कर चुके हैं; दुर्जर—जीत पाना कठिन; गेह-शृङ्खलाः—गृहस्थ जीवन की बेड़ी; संवृश्च्य—काट कर; तत्—वह; वः—तुमको; प्रतियातु—लौटाया जाय; साधुना—शुभ कर्म द्वारा ।

मैं आपलोगों की निस्पृह सेवा के ऋण को ब्रह्मा के जीवनकाल की अवधि में भी चुका नहीं पाऊँगा। मेरे साथ तुमलोगों का सम्बन्ध कलंक से परे है। तुमने उन समस्त गृह-बन्धनों को तोड़ते हुए मेरी पूजा की है जिन्हें तोड़ पाना कठिन होता है। अतएव तुम्हारे अपने यशस्वी कार्य ही इसकी क्षतिपूर्ति कर सकते हैं।

**तात्पर्य :** इस श्लोक के भावार्थ तथा शब्दार्थ *श्रीचैतन्य चरितामृत* (आदि ४.१८०) में श्रील प्रभुपाद की अंग्रेजी टीका से लिये गये हैं।

निष्कर्ष यह है कि गोपियाँ भगवान् की क्षणिक अनुपस्थिति में अपने आचरण द्वारा धन्य हो गईं। उनके तथा भगवान् के मध्य पारस्परिक प्रेम में आशातीत वृद्धि हो गई। यह सिद्धि कृष्ण तथा उनके प्रिय भक्तों की है।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के दसवें स्कंध के अन्तर्गत 'पुनः मिलाप' नामक बत्तीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।